International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 02-01-2020; Accepted: 03-02-2020; Published: 02-03-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 04-06

भाषा भंगिमा के प्रयोक्ताः जैनेन्द्र

डा0 अमरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, अमिटी लॉ स्कूल, अमिटी यूनिवर्सिटी उत्तर प्रदश, लखनऊ कैम्पस, **उत्तर प्रदेश**, भारत

प्रस्तावना

साहित्य, भाषा और समाज का अत्यन्त घनिष्ट संबंध रहा है समाज के चितवृत्ति के परिवर्तन का प्रभाव साहित्य और उसकी भाषा पर भी पड़ता है। यह प्रभाव साहित्यिक विधाओं का रूप परिवर्तन भी तय करता है। हमारी वैदिक – पौराणिक परम्परा में जहां संवादों, महाकाव्यों का महत्व रहा है। वहीं आज साहित्य का रूप बहुत बदल चुका है। आख्यायिका परम्परा का साहित्य आज निबन्ध, कहानी, कविता, उपन्यास आदि जैसी अनेक विधाओं में परिवर्तित हो चुका है यह परिवर्तन सामाजिक चितवृत्ति में होने वाले परिवर्तन के कारण ही होता रहा है। समाज की भावदषा एवं मनोदषा में परिवर्तन के साथ–साथ भाषा का रूप भी परिवर्तित होता रहता है।

साहित्य, भाषा और समाज के इन्हीं संबंधों के परिणाम स्वरूप भाषा भी अपनी यात्रा तय करती है अपने आरम्भिक रूप से लेकर अब तक हिन्दी भाषा, के रूप में अनेक परिवर्तन हुए हैं। यह परिवर्तन काव्य भाषा एवं गद्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठा के साथ–साथ सूक्ष्म भावात्मक अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में भी दृष्टिगत होती है। गद्य भाषा के रूप में सर्वाधिक वैविध्यपूर्ण रूप औपन्यासिक भाषा का है। औपन्यासिक भाषा में काव्यभाषा, की भावुकता, निबन्ध भाषा की सी विचारात्मकता, जीवनी का मार्धुय, नाट्य भाषा की प्रत्युत्पन्नता के साथ–साथ चित्रात्मकता एवं देषकाल और परिवेष का चित्रण भी दृष्टिगत होता है।

हिन्दी की वर्तमान औपन्यासिक परम्परा का आरम्भ 'परीक्षागुरू' उपन्यास से माना जाता है। परीक्षागुरू उपन्यास भी भाषा सामान्य वर्णनात्मक स्तर की है। हिन्दी औपन्यासिक परम्परा में कथा सम्राट प्रेमचन्द्र का विषेष स्थान है। प्रेमचन्द्र ने सामान्य जन की भाषा को अपने उपन्यासों के फलक पर उभारने का कार्य किया। प्रेमचन्द्र के ही समकालीन कथाकारों में जैनेन्द्र मनोविष्लेषण्वादी कथाकार हैं। जिसका प्रभाव उनकी भाषा पर दृष्टिगत होता है। जैनेन्द्र ने औपन्यासिक भाषा को भाषा के वर्णनात्मक स्तर से ऊपर उठाया। 'जैनेन्द्र' हिन्दी के एक ऐसे कथाकार के रूप में जाने जाते हैं, जिनकी भाषा में कविता, निबंध, नाटक एवं आत्मकथात्मक तीनों शैलियों का प्रयोग देखा जा सकता है।

जैनेन्द्र के औपन्यासिक भाषा की तरलता का मुख्य कारण उनके उपन्यासों की विषय –वस्तु है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों के लिए प्रेमचन्दी से अलग किस्म के पात्रों और विषय – वस्तु का चयन किया। जैनेन्द्र मानव मन के मनोभाव की पड़ताल करते हैं और अर्न्तमन के आलोड़न–विलोड़न का गहन स्तर पर बड़ी ही सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। जैनेन्द्र द्वारा रचित प्रमुख कृतियां है– परख, वातायन, एकरात, नीलम देष की राजकन्या, सुनीता, त्यागपत्र, मुक्तिबोध, सुखदा, कल्याणी, जयवर्धन, दर्षाक, जैनेन्द्र, की समग्र कहानियॉ, स्मृति पर्व, सोच–विचार, परिप्रेक्ष्य, अकाल पुरूष गांधी, प्रेमचन्द्र एक कृति व्यक्तित्व, साहित्य – संस्कृति, साहित्य और परम्पराएँ, गॉधी और हमारा समय तथा संस्कृति इत्यादि।

जैनेन्द्र ने हिन्दी साहित्य को बहुविध समृद्ध किया। लेकिन मूलतः जैनेन्द्र कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। उनके द्वारा रचित 'त्याग पत्र' उपन्यास भाव एवं भाषा दोनाी दृष्टियों से विषिष्ट है। 'त्यागपत्र' उपन्यास एक न्यायधीष की मनोदषा का चित्र है। उपन्यास की आरम्भिक पंक्तियॉ हैं–

'नहीं भाई, पाप–पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की जरूरत को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ की जिनके ऊपर राई–रत्ती नाप–जोखकर पापी की पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें! मेरे बस का वह काम नहीं है।'[1]

उपरोक्त पंक्तियों में एक जज ही न्याय व्यवस्था एवं समाज व्यवस्ता पर प्रष्न चिन्ह खड़ा करता है, यह अन्तः मन की व्यथा है। यह एक ऐसी पीड़ा है जो हमारे अन्तःकरण को बहुत गहरे तक प्रभावित करता है। जस्टिस एम0 दयाल की वेदना वर्तमान भौतिकतावादी समय की संवेदना है। आज हम जिस समय, व्यस्था और समाज में जी रहे हैं, उस समय मे यह अत्यन्त प्रासंगिक हो जाता है कि हम उस मर्यादा को समझें जो समाज के अन्तिम व्यक्ति तक न्याय पहुॅचाने में समर्थ हो। जैनेन्द्र ने उपरोक्त पंक्तियों में लिखा है कि 'राई–रत्ती नाप जोखकर पापी कहकर' व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें।[2]

ये भाषा के सवेदन एवं उदाक्तता का उत्कर्ष है। इन पंक्तियों सामान्य शब्दों का प्रयोग करते हुए कथाकार ने गहन भावबोध को प्रस्तुत किया है। शब्दों एवं उनकी भंगिमा का ऐसा प्रयोग हिन्दी कथा साहित्य में पहली बार देखने को मिला। शब्दों की भंगिमा से भावों के सम्प्रेषण में जैनेन्द्र ने बखूबी किया है। जैनेन्द्र ने लिखा है –

'हम लोगों का असली घर पछॉह की ओर था। पिता प्रतिष्ठा वाले थे और माता अत्यन्त कुषल गृहणी थीं। जैसी कुषल थीं, वैसी कोमल भी होती तो? पर नहीं, उस 'तो–? के मुॅह में नहीं बढ़ना होगा।'[3]

कहते –कहते शब्दों को मुह में रोक लेना, और बिना कुछ कहे सब कुछ अभिव्यक्त कर देना जैनेन्द्र के भाषा की विषिष्टता है। शब्दों का भाव सम्प्रेषण के लिए अधिकतम प्रयोग में लाना जैनेन्द्र की विषेषता है। कम से कम शब्दों में सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभाव अभिव्यक्त करने की कला में जैनेन्द्र माहिर हैं। रूप सौन्दर्य का वर्णन भी जैनेन्द्र अत्यन्त सजगता से करते हैं– 'बुआ का तब का रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है, तब कदाचित उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन ही मन नीयत उसकी रहती हैं पिताजी तो बुआ की मोहिनी मूरत पर रीझ–रीझ जाते थे।'[4]

सौन्दर्य पर रीझना रूप राषि की उत्कृष्टता द्योतक है। मृणाल के सौंदर्य की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए जैनेन्द्र ने शब्दों की मितव्ययिता का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। औपन्यासिक शषा में ऐसा प्रयोग हिन्दी कथा साहित्य की भाषा में जैनेन्द्र ने आरम्भ किया। जैनेन्द्र की भाषा रूप वर्णन करते हुए चित्रात्मकता का एहसास कराती है। मृणाल के ही रूप का अन्यत्र वर्णन द्रष्टव्य हैं–

'थी बुआ ही, लेकिन उनका यह क्या रूप था? देह दुबली थी। मुख पीला था। गर्भवती थीं। एक धोती में अपनी सब देह ढॉके बैठी थीं। मुख पर क्या लाज की छाया आ छायी थी।'[5]

पहले मृणाल के जिस रूप का वर्णन जैनेन्द्र ने किया वह रूप वर्णन और बाद में जिस रू॰ का चित्रण कथाकार ने किया है दोनों की भाव दषा में व्यापक अन्तर दृष्टिगत होता है। एक वर्णन मन में आहलादकारी भाव संचारित करता है, तो दूसर चित्रण मन की वेदना एवं करूणा भाव से भर देता है।

जैनेन्द्र मूलतः सूक्ष्म मनोभावों के कथाकार हैं। पीड़ा, वेदना एवं करूणा जैसे मनोभव उनके कथावस्तु के अभिन्न अंग हैं। भाषा भावों की अनुगामनी की तरह उनके उपन्यासों में प्रवाहमान होती रही है। त्यागपत्र उपन्यास की भाषा एवं संरचना भावानुरूप परिवर्तित होती चलती है। शब्दों के अधिकम अर्थों का दोहन एवं भंगिमा का प्रयोग कैसे करना है इसे कथाकार बखूबी जानता है। त्यागपत्र उपन्यास भावों एवं सामाजिक संबंधों के ताने–बाने के गहन बुनावट एवं बनावट पर एक तल्ख टिप्पणी के रूप में जाना जा सकता है। आज भौतिकता के प्रचण्ड प्रवाह के बीच प्रमोद के मन की पीड़ा एवं वेदना एक ऐसे व्यक्ति की तड़प के रूप में जानी जा सकती है, जो चाहकर भी उपने लोगों के लिए कुछ करने में सक्षम नहीं है, समाज की व्यवस्था से ही हमारे जीवन मूल्य प्रकारान्तर से निर्धारित होते रहे हैं। इन्हीं मूल्यों के परिपालन में व्यक्ति की अनेकानेक मनः स्थितियॉ आती जाती रहतीं हैं। और हम चाहकर समाज के मूल्यों से परे जाकर आचरण नही कर पाते है। इस बिडम्बना को जैनेन्द्र ने मृणाल के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

''तुम परवाह न करो भाई, तो चल सकता है, लेकिन मैं तो ऐसा नहीं कर सकती कि परवाह न करूँ। मै समाज को तो तोड़ना फोड़ना नहीं चाहतीं हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेगें? या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे? इसलिए में इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलकांक्षा में खद ही टूटती रहूँ।''[6]

स्माज और व्यक्ति का द्वन्द उपरोक्त पंक्तियों में स्पष्ट दृष्टिगत होता है। जैनेन्द्र के भाषा की यह विषेषता है कि वह भाव एवं परिवेष के अनुसार शब्दों को ऐसे पिरोते हैं कि भाषा अपने पूरे सामर्थ्य के साथ भावों मे गहनतर स्तर से मुखर कर देती है–

''आज वे बातें मुझे याद आती है और निष्चय हो गया है कि सचमुच जो शास्त्र में नहीं मिलता, वह ज्ञान आत्मव्यथा में मिल जाता है, नही तो इतने गम्भीर जीवन–तथ्य को इस स्वाभविकता के वष में करने और व्यक्त करने के बुआ के अधिकार का और भेद क्या हो सकता है।''[7]

मनवीय संबंधों के साथ–साथ जैनेन्द्र ने भौतिकता एवं आध्यात्मिकता दोनों स्थितियों का चित्रण किया है। हम अपने जीवन का अधिकांष समय भौतिक सुख साधनों को एकत्र करने में व्यतीत कर देते हैं, लेकिन जब हम अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करते हैं तो तमाम भौतिक सुख–साधन मिथ्या प्रतीत होते हैं–

''मै अपनी व्यर्थ प्रतिष्ठा के ढूह पर बैठा हूँ, वह कृत्रिम है, क्षणिक है। हृदय वहॉ कहॉ है? यज्ञ वहॉ कहॉ है? लेकिन वह सब–कुछ मुझे ऊँचा उठाये हुए है? नामी वकील रहा, अब जज हूँ। लोगों को जेल–फॉसी देता हूँ, समाज में माननीय हूँ। इस सबके समाधान में चलो, यहीं कहो कि यह कर्मफल है। लेकिन सच पूछो तो मेरा जी जानता है कि कैसे कर्मों का फल है। कामयाब वकालत और इस जजी के इतने मोटो शरीर में क्या राई जितनी भी आत्मा है? मुझे सन्देह होता है।'[8]

उपरोक्त पंक्तियों जैनेन्द्र ने आत्मबोध का चित्रण किया है। भौतिक सुख साधन हमें सुख दे रहे हैं लेकिन आत्मिक खुषी से हमें निरन्तर दूर करते जा रहे हैं। एक नामी जज या वकील होने के बाद भी आत्मा के होने पर सन्देह होना हमारी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि का परिचायक है। समाज और समाज की मान्यता एक ओर है एवं आत्मबोध और आत्मा को जीवन्त रखना बड़ी बात है। लेखक की यह मान्यता है कि हम आत्मा को खोकर हम चाहे कुछ ही हासिल कर लें, वह हमारी आत्मिक खुषी के लिए प्रीतिकर नहीं होगा–

'पर क्यों? मैं यह नहीं जानता कि यह सब अपने को ठगना है। समाज के ऊपर चढ़–बैठकर मैं उसे दबा सकता हूँ, वह यह कि मैं अपने को समाज की जड़ों में खीच दूँ। अज्ञात रहकर सच्च बनूँ, झूठा बनकर नामवर होने में क्या धरा है? ओह, वैसी नामवरी निष्फल है, व्यर्थ है, निरी रेत है। आत्मा को खोकर साम्राज्य पाया तो क्या पाया? वह रत्न को गंवाकर धूल का ढेर पाने से भी कमतर है।'[9]

जैनेन्द्र मनोविषलेषणवादी कथाकार हैं, मानव मन के भीतर गहरे उतरकर मानव मन की परत–दर–परत खोलकर कथा फलक पर उभारते हैं। भाव और भाषा का अदभूत सामंजस्य आपकी विषेषता है। 'आत्मा को खोकर साम्राज्य पाना धूल पाने के समान है। यह वाक्य गहन आत्मविष्लेषणात्मक वाक्य है। समूचे जीवन के सार को जैनेन्द्र ने अभिव्यक्त किया है।

भारतीय सनातन परम्परा में संवेदना को विषेष महत्व दिया गया है। आषय है कि दूसरे या अपने किसी अभिन्न की पीड़ा या वेदना को देखकर या जानकर उसके कष्ट के समान ही अनुभूति करना ही संवेदना है। आज भौतिक सुख–साधनों के वषीभूत होने के कारण हमारी संवेदनषीलता गहरे स्तर तक प्रभावित हुई है। मानव जीवन की गति अत्यन्त तीव्र एवं तीव्रत्तर होती जा रही है। यह गति अंधी दौड़ में परिवर्तित हो गयी है। आखिरकार इस संन्दर्भ में जैनेन्द्र चिन्तन करते हैं–

''पूछता हूँ, मानव के जीवन की गति क्या अन्धी है? वह अप्रतिरोध्य है। पर अन्धी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा। मानव चलता जाता है और बूँद–बूँद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है वही सार है। वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस मणि है, उसके प्रकाष में मानवव का गतिपथ उज्जवल होगा। नही तो चारों ओर गहन वन हैं। किसी और मार्ग सूझता नहीं है, और मानव अपनी क्षुधा–तृष्णा, राग–द्वेष, मान–मोह में भटकता फिरता है। यहॉ जाता है, वहॉ जाता है। पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता। एक ही जगह पर अपने ही जुए में बॅधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहता है।''[10]

उपरोक्त पंक्तियों में कथाकार ने अपने जीवन का सार प्रस्तुत किया है। दर्द मानव मानस की मणि है, उसी से हम जीवन पथ पर आगे बढ़ते हैं। भारतीय जीवन दर्षन में पीड़ा, वेदना, करूणा, दुःख और दर्द को विषेष महत्व दिया गया है। जैनेन्द्र ने अपनी भाषा में शब्दों के माध्यम से हमारे जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत किया है। जीवन की तीव्र गति हमें कहॉ ले जा रही है? इस पर बहुत ही गहनता से विचार किया है।

आज के समय में भौतिकता के गहन अंधकार में हम आकण्ठ डूबते जा रहे हैं। यह सत्य इस युग का ही नही प्रकारान्तर से चला आ रहा है। भौतिकता हमें आकर्षित करती है लुभाती है औ आध्यात्मिकता हमारे चित्र को शान्त और व्यक्तित्व को उदाक्त बनाती है। विवेच्य उपन्यास में जैनेन्द्र ने भौतिक सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे प्रमोद के मन में होने वाले आलोड़न–विलोड़न को बखूबी कथा के फलक पर उभारा है।

मानव जीवन के गहनत्तर स्तरों पर उतरकर विष्लेषण करते हुए अथाह सागर के उपमान से जीवन को अपमित करते है। मन में उठने वाली लहरों के सागर के समान ही हैं–

''उस सागर की लहरों का अन्त कहॉ है। कूल कहॉ है? पार कहॉ है? कहीं पार नहीं है, कहीं किनारा नहीं है। ऑखों को ठहराने के लिए कोई सहारा नहीं है। क्षितिज का छोर हे, जहॉ आसमान समुद्र से आ मिला है।''

वहॉ नीला ॲधियारा दीखता है, पर छोर वहॉ भी नहीं है। छोर

वहॉ हमारी अपनी दृष्टि का है, अन्यथा वहॉ भी वैसी ही अकूत विस्तीर्णता है।''[11]

हमारी दृष्टि की अपनी सीमा है, वह उतना ही देख सकती है, जितना उसका सामर्थ्य है। जहॉ हमें यह दीखता प्रतीत होता है कि आसमान और समुद्र एक दूसरे से मिल रहें हैं, वह हमारे नेत्रों की सीमा है। यह सीमा हमारे ज्ञान एवं संवेदना की भी है

जैनेन्द्र भाव, भाषा एवं षिल्प के कुषल प्रयोक्ता हैं। त्यागपत्र उपन्यास उनकी बेजाड़ उपलब्धि हे। विचारों का संगुम्फन, शब्दों की बनावट एवं बनावट के कुषल कारीगर हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से जैनेन्द्र जी ने औपन्यासिक भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की। भाषा एवं शब्दों से ही नही उनकी भंगिमा से भी भाव सम्प्रेषण में भी जैनेन्द्र सिद्धहस्त हैं। 'त्यागपत्र' उपन्यास की भाषा के माध्यम से जैनेन्द्र ने भौति कता एवं आध्यात्मिकता के अन्तर्द्वन्द को बहुत ही सहज रूप में सम्प्रेषित किया है।

संन्दर्भ

1. त्यागपत्र – पृष्ठ 07, भारतीय ज्ञानपीठ, 2015
2. त्यागपत्र – पृष्ठ 07
3. त्यागपत्र – पृष्ठ 07
4. त्याग पत्र – पृष्ठ 8
5. त्यागपत्र पृष्ठ 46
6. त्यागपत्र पृष्ठ 64
7. त्यागपत्र पृष्ठ 65
8. त्यागपत्र पृष्ठ 40–41
9. त्यागपत्र पृष्ठ 41
10. त्यागपत्र पृष्ठ 42
11. त्यागपत्र पृष्ठ 78।
12. त्यागपत्र – जैनेन्द्र कुमार
13. हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकासः रामस्वरूप चतुर्वेदी
14. हिन्दी उपन्यास का इतिहासः गोपाल राय
15. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहासः बच्चन सिंह
16. हिन्दी गद्य विन्यास और विकासः रामस्वरूप चतुर्वेदी